E-ISSN: 3048-6041 | Volume- 2, Issue- 2 | February 2025

जनपदीय अध्ययन की चेतना और वासुदेव शरण अग्रवाल

ऋषभ पाण्डेय
डॉक्टोरल फेलो, इंडियन काउंसिल ऑफ़ सोशल साइंस रिसर्च, नई दिल्ली
शोध छात्र, हिंदी विभाग, काशी हिंदू विश्वविद्यालय,वाराणसी

शोध सार :

भारतवर्ष ग्राम प्रधान देश है। इस देश की सांस्कृतिक एकता के सूत्र भिन्न भिन्न गाँवों से मिलकर बनी अनगिनत इकाइयों में सन्निबद्ध हैं। वासुदेव शरण अग्रवाल ने इस सांस्कृतिक इकाई का प्रस्थान बिंदु भूमि,जन और संस्कृति इन तीन सूत्रों में देखने के लिए प्रेरित किया था। ये सूत्र ही भारतीय लोकमानस की उस सहजीविता की ओर इशारा करते हैं जो देश की अलग अलग भौगोलिक इकाइयों में लोकज्ञान के साथ अलग अलग जनपदों का निर्माण करता है। उदाहरण के तौर पर जिस तरह अवधी एक जनपदीय भाषा है किंतु अवधी का सांस्कृतिक विस्तार जिस कैनवास पर हुआ है वहाँ हम देखते हैं कि किस तरह एक लोकभाषा अलग अलग रूपों या उपभाषाओं में अपनी अपार भाषिक संपदा के साथ एक जनपदीय इकाई की तरह उपस्थित है। जनपदीय अध्ययन बीसवीं शताब्दी के लगभग चार दशकों बाद औपनिवेशिक संस्कृति के प्रभाव से उपजी हीनता ग्रंथि का एक प्रतिरोध भी था। इस आलेख में वासुदेव शरण अग्रवाल की जनपदीय अध्ययन की अवधारणाओं पर विचार किया गया है।

बीज शब्द - जनपदीय अध्ययन, लोक, जनपद,वासुदेव शरण अग्रवाल,संस्कृति, इतिहास, भाषा,परंपरा, लोक भाषा,हिन्दी, पृथिवी पुत्र

मूल आलेख- भारतवर्ष का इतिहास इस राष्ट्र के भिन्न भिन्न अंग उपांगों में प्रसरित सांस्कृतिक इकाइयों का इतिहास है। ये इकाइयां अपनी भौगोलिक भिन्नताओं के साथ साथ भिन्न सांस्कृतिक सूत्रों में सन्निबद्ध हैं। ये संस्कृतियाँ सदा से ही देश की भौगोलिक भूमि और उस भूमि से निःसृत जनों की अभिव्यक्ति से अभिसिक्त हैं। प्रत्येक इकाइयां मिलकर इस राष्ट्र की बहुलतावादी संस्कृति की परिचायक रही हैं।प्रो वासुदेव शरण अग्रवाल ने यूँ ही नहीं इस सामासिक पहलू को देश की **मौलिक एकता** की संज्ञा दी थी।इन भिन्न भिन्न इकाइयों में पसरे हुए भिन्न भिन्न व्यावहारिक लोक में संवेदना की वे कोटि कोटि रचनाएँ जीवित हैं जिन्होंने मानव समाज को प्राणवान और विकासोन्मुखी रसधारा से सिंचित किया है। जब हम साहित्यिक संदर्भों में बात करते हैं तब भारतवर्ष का इतिहास इस भूमि से निःसृत मानव संवेदनाओं का इतिहास जान पड़ता है जो इस देश के व्यावहारिक ज्ञानकोश को समृद्ध करते हुए साहित्य में मनुष्यता का बोध कराता है। रामस्वरूप चतुर्वेदी अपनी पुस्तक 'हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास 'में इसी क्रम में अपनी बात को दर्ज कराते हैं -,''इतिहास की इस प्रक्रिया को स्पष्ट करने के लिए यह भी ज़रूरी है कि हम युग विशेष की संवेदना को समझें, और उस युग के साहित्य में उसकी साझेदारी का विश्लेषण कर सकें। अभी तक के इतिहासों में सांस्कृतिक पृष्ठभूमि का इतिवृत्त- कथन अलग होता है, और साहित्य-धारा का दिग्दर्शन अलग। यहाँ प्रयत्न यह है कि साहित्य और संवेदना को एक साथ देखा-परखा जा सके।"[1]

संवेदना की अनगिनत इकाइयों में एक दीर्घतम इकाई हिंदी प्रदेश है जिसकी भाषिक एकता और संवेदना का सबसे बड़ा प्रमाण प्रश्न यह है कि अवध की संस्कृति में पैदा हुआ एक मुसलमान कवि जायसी हजारों मील दूर राजस्थान की हिंदू कथा परंपरा में व्याप्त रानी पद्मावती पर किस तरह मध्ययुग का महानतम महाकाव्य रचता है ? जबकि उस समय संचार के परिवहन और संचार माध्यम आंशिक मात्र में मौजूद थे। ऐसे कई प्रश्न हैं जो उस विशाल जनता की ओर इंगित करते हैं जिनके पास लोक जीवन की अनगिनत संपदा मौजूद है। इस विशाल जनता में से जन को निकालकर उसे भिन्न भिन्न इकाईयों (पदों) से संपृक्त कर दिया जाए तो जनपद शब्द की अर्थसत्ता झंकृत हो जाती है।

यह हिंदी प्रदेश के विशाल भू भाग में बसे जनपदों का साहित्य ही है जो इस प्रदेश की भाषिक एकता और सांस्कृतिक चेतना को पोषित करता आया है और इसके साथ ही साथ जनपदीय साहित्य के अध्ययन ने इतिहास और लोक संस्कृति के उन अमूर्त्त संबंधों पर भी प्रकाश डाला है। रामनारायण उपाध्याय ने कहा है कि,"गाँवों का आदमी जाने कब से बाट जोह रहा है, कि कोई आये और उससे , भी कुछ ले आये। उसका समग्र जीवन, एक अनपढ़ी खुली पुस्तक की तरह, सामने बिछा है, उसका रहन-सहन, खान-पान, वस्त्राभूषण, आचार-विचार, रीति-रिवाज, धर्म और आस्था, विश्वास और मान्यताएँ, पर्व और उत्सव मेले और तमाशे, गीत और कथायें, नृत्य संगीत और कलायें, और भाषा तथा बोलियों के प्रत्येक शब्द हमें कुछ न कुछ देने की क्षमता रखते हैं।"[2] हिंदी के बौद्धिक जगत में जनपद साहित्य की अध्ययनाकांक्षाओं में कुछ विशिष्ट विद्वानों का योगदान था है। जिसमें बनारसीदास चतुर्वेदी, हजारी प्रसाद द्विवेदी के समकक्ष डॉ वासुदेव शरण अग्रवाल का नाम भी जुड़ता है।

डॉ वासुदेव शरण अग्रवाल और जनपदीय अध्ययन की यात्रा :

डॉ वासुदेव शरण अग्रवाल एक सचेत इतिहासकार थे इसलिए उन्होंने साहित्य और लोकवार्ताओं को इतिहास के स्रोत के रूप में देखा। जिस तरह से इतिहास के अध्ययन के अलग अलग स्रोत होते हैं उसी तरह से प्रत्येक जनपदों में बसी हुई जनता का मौखिक साहित्य यानी लोकवार्ता शास्त्र उस स्थान विशेष और युग विशेष के अध्ययन का मार्ग खोल सकता है। उन्होंने जनपदीय अध्ययन की जो प्रणाली विकसित की वह पूर्व में पश्चिम के इतिहासकारों द्वारा चली आ रही परंपरा का पल्लवन था। क्योंकि इसके पहले औपनिवेशिक इतिहासकारों ने जैसे कर्नल टॉड ने **'एंटीक्विटी ऑफ राजस्थान'** जैसी ऐतिहासिक कृति के निर्माण में तत्कालीन राजस्थान के मौखिक और लिखित साहित्य का सहयोग लिया था। डॉ अग्रवाल ने इतिहास के सहयोगी पक्षों में जनपदीय साहित्य को महत्वपूर्ण माना।और यहीं से एक तर्कशील हस्तक्षेप के साथ उनकी जनपदीय अध्ययन की चेतना विकसित होती है। डॉ नरेश कुमार उनकी इस धारणा को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं कि डॉ० अग्रवाल ने ग्रामों या जनपदों की संस्कृति का अध्ययन ही जनपदीय साहित्य के अध्ययन का क्षेत्र माना है। लोक-गीत, लोक कहानी, मुहावरे, स्थानीय क्षेत्रों का इतिहास, भूगोल, सामाजिक परम्पराओं और व्यवहारों आदि को जनपदीय साहित्य के क्षेत्र में समाविष्ट किया है। लोक और मानव इन तीनों के अध्ययन को उन्होंने नए जीवन का अध्यात्मशास्त्र कहा है।[3]

डॉ अग्रवाल की जनपदीय अध्ययन चेतना का उत्स है 'पाणिनि कालीन भारतवर्ष'। उन्होंने पाणिनि के सूत्रों को खंगालते हुए एक काल विशेष भारतीय इतिहास का चित्र खींच दिया। उन्होंने पाणिनि के ग्रंथ अष्टाध्यायी का अध्ययन करते हुए यह प्रमाण दिया कि एक एक शब्द किस तरह से पाणिनि के समय के भारतवर्ष का प्रतिनिधित्व कर रहे हैं। डॉ अग्रवाल की खास बात यह थी कि वे आधुनिक लोक वार्ताओं में चलती फिरती या स्तब्ध हो चुकी शब्दावलियों को हजार वर्ष पुरानी परंपरा में ढूढ़ निकालते हैं। उन्होंने आज के जनपदों में प्रयोग किये जा रहे शब्दमोतियों को पाणिनि के ग्रंथ में अनुस्यूत पाया और उसका गूढ़ वाचन किया। डॉ अवधेश प्रधान उनके इस महान ग्रंथ के अंतर्वस्तु के बारे में लिखते हैं कि," वह पाणिनीय व्याकरण के सूत्रों में प्रयुक्त शब्द का प्राचीन अर्थ ढूँढ़ते हैं, फिर आज लोकभाषाओं में प्रचलित उसका सगोतिया शब्द ढूँढ़ निकालते हैं और फिर पाणिनिकाल से लेकर आज के जनपदीय लोकजीवन तक भारतीय संस्कृति की अटूट परम्परा उनके सामने प्रत्यक्ष हो उठती है। बड़े हल के लिए अष्टाध्यायी में दो शब्द हैं-हलि और जित्य। इन शब्दों की उत्तरजीविता की खोज के लिए वे लोकभाषाओं की ओर देखते हैं और यह देखकर उनके साथ-साथ हम भी चमत्कृत रह जाते हैं कि अवधी भाषा में अभी तक हरी और जीत शब्द सुरक्षित रह गए हैं।"[4]

डॉ अग्रवाल ने जनपदीय अध्ययन की अवधारणा को समझने के लिए एक महनीय निबंध लिखा है पृथिवी पुत्र। उन्होंने अपने देश समाज और संस्कृति के प्रति प्रबुद्ध जनों को पृथिवीपुत्र कहा है। यह संज्ञा उन्होंने अथर्ववेद से उधार ली है। (माताभूमि पुत्रो अहं पृथिव्या) अर्थात डॉ अग्रवाल की मनसा स्पष्ट होती है कि वे कहना चाह रहे हैं कि हिंदी के साहित्यकारों को अपनी सांस्कृतिक जड़ों से जुड़ना चाहिए तभी इस देश की विशाल और अप्राप्य साहित्यिक सामग्रियों को समझने के लिए उनमें एक समृद्ध दृष्टि विकसित होगी। उनका मानना था कि हिंदी के लेखकों को वालेंटियर्स की तरह गाँव गाँव घूम कर नष्ट हो रही देश की विशाल साहित्यिक सामग्रियों का संचयन करना चाहिए। उन्होंने देवेंद्र सत्यार्थी जैसे विद्वानों को इस अवधारणा के सबसे खूबसूरत उदाहरण बताया। क्योंकि उस समय राहुल सांकृत्यायन जैसे विद्वानों ने तिब्बत के प्रदेशों में घूम घूमकर विशाल बौद्ध साहित्य का संचयन किया था जिससे हिंदी साहित्य के आदिकाल की कई गुत्थियाँ सुलझ रही थीं और विचार विमर्श के कई मार्ग खुले थे। डॉ अग्रवाल चाहते थे कि राहुल जी और देवेंद्र सत्यार्थी जैसे विद्वानों की तरह इस क्षेत्र में और शोधोन्मुख लोग आएं। उन्होंने अपने निबंध पृथिवीपुत्र में यह स्पष्ट कहा कि,“ हमने अपने चारों ओर बसने वाले मनुष्या का भी तो अध्ययन नहीं शुरू किया । देशी नृत्य, लोक-गीत, लोक का संगीत, सबका उद्धार साहित्य- सेवा का अंग है। एक देवेन्द्र सत्यार्थी' क्या, सैकड़ां सत्यार्थी गाव-गाव घूमे, तब कहीं इस सामग्री को समेट पावेंगे। इस देश में मान अपरिमित साहित्य-सामग्री की प्रतिक्षण वृष्टि हो रही है, उसको एकत्र करने वाले पात्री- की कमी है। लोक की रहन-सहन, भेष भूषा, भोजन और वस्त्र, सबका अध्ययन करना है। जनपदों की भाषाएँ तो साहित्य की साक्षात् कामधेनुए हैं। उनके शब्दों से हमारा निरुक्तशास्त्र भरा-पुरा बनेगा।” [5] उस समय 1940 के आसपास हो रही जनपदीय अध्ययन की बहसों में उन्होंने रुचि ली। उन्होंने अपनी स्थापनाओं को स्पष्ट करते हुए कहा था कि जनपद जीवन के अनंत पहलुओं की लीलाभूमि है। खुली हुई पुस्तक के समान जनपदों का जीवन हमारे चारों ओर फैला हुआ है। पास गाँव और दूर देहातों में बसने वाला एक-एक व्यक्ति उस रहस्य-भरी पुस्तक के पृष्ठ हैं। यदि हम अपने-आपको उस लिपि से परिचित कर लें जिस लिपि में गाँवों और जनपदों को अकथ कहानी पृथ्वी और आकाश के बीच में लिखी हुई है, तो हम सहज ही जनपदीय जीवन की मार्मिक कथा को पढ़ सकते हैं। प्रत्येक जानपद जन एक पृथ्वीपुत्र है।[6] डॉ अग्रवाल ने भारतीय संस्कृति को समझने के लिए जनपदों में बसी निरक्षर जनता के मौखिक साहित्य को एक महत्वपूर्ण स्रोत बताया।

जनपदीय आंदोलन और वासुदेव शरण अग्रवाल :

औपनिवेशिक हिंदुस्तान में ग्रियर्सन ,मार्शमैन, और टर्नर जैसे लेखकों ने देश की भिन्न भिन्न लोकभाषाओं के साहित्य का अध्ययन करते हुए उनकी भूमिका को स्पष्ट किया। एक तरह से यह कहा जा सकता है कि भारत में जनपदीय अध्ययन की नींव उक्त विद्वानों ने ही डाली। जार्ज ग्रियर्सन ने बिहार में रहते हुए वहाँ के कृषक जीवन पर **'Bihar Peasant Of Life'** पुस्तक लिखी जो बंगाल सेक्रिटिएट प्रेस से सन 1885 में प्रकाशित हुई थी। उन्होंने इस पुस्तक में बिहार अलग अलग सांस्कृतिक क्षेत्रों को सम्मिलित करते हुए ग्रामीण जनमानस के जीवन दर्शन की ओर लोगों का ध्यान खींचा था। डॉ० अग्रवाल ने बनारसी दास चतुर्वेदी को लिखे एक पत्र में ग्रियर्सन की इस कृति को जनपदीय अध्ययन की आदर्श रूप रेखा बताते हुए जनपदीय अध्ययन की कार्यशैली के प्रस्ताव को उत्साहित किया।[7] डॉ अग्रवाल ने पत्र संवाद की इसी कड़ी में जनपदीय अध्ययन के कई पहलुओं को उजागर करते हुए पूर्ववत चले आ रहे कुछ अमूर्त्त कार्यों का जिक्र किया। वे एक और पत्र में बनारसी दास चतुर्वेदी से कह रहे हैं कि,“काश्मीर के हरमुकुट पर्वत पर बैठकर डा० सर झॉरल स्टाइन ने एक पुस्तक (Tales of Hatim हातिम की कहानियाँ) के रूप में लिखी है, जिसमे काश्मीरी कहानियों का लोकभाषा में संग्रह किया गया है।”[8]

1940 के पास बनारसी दास चतुर्वेदी, डॉ वासुदेव शरण अग्रवाल, वृंदावन दास और अन्य विद्वानों ने जनपदीय आंदोलन को एक बौद्धिक दिशा भले दे दी हो लेकिन इसके पूर्ववत जनपदीय आंदोलन शिथिलता से किंतु किसी न

किसी रूप में गति पकड़ रहा था। बीसवीं शताब्दी के प्रारंभिक दशक से ही राम नरेश त्रिपाठी ने देश के कोने कोने में घूम घूम कर लोकगीतों का संग्रह किया जो कार्य 1924 में 'कविता कौमुदी' के नाम से प्रकाशित हुआ। हिंदी में जनपदीय अध्ययन के लिए यह संभवतः एक पहल रही हो। इसके अलावा देवेंद्र सत्यार्थी ने इस कार्य को और भी बड़े वितान पर आगे बढ़ाया। उन्होंने सीमाओं के परे जा जाकर जंगलों में रह रही जातियों को लोकसंग्रह हेतु चुना। विशाल भारत में उनके कार्य प्रकाशित होते रहते थे। डॉ जगदीश चतुर्वेदी ने लिखा है कि यह कार्यक्रम तब मुकम्मल रूप से अस्तित्व में आया जब 1934 के विशाल भारत में बनारसी दास चतुर्वेदी ने लेख लिखते हुए हिंदी की प्रांतीय बोलियों के आधार पर संस्थाओं की माँग का मुद्दा उठाया।[9] आगे वे लिखते हैं कि कई संस्थाओं के बनने के बाद हिंदी साहित्य परिषद,मथुरा ने ब्रज साहित्य मंडल का प्रथम सम्मेलन बुलाया।इस सम्मेलन ने ब्रज साहित्य मण्डल की स्थापना का निश्चय किया। डा० वासुदेव शरण अग्रवाल मण्डल के प्रथम सभापति चुने गए और श्री सत्येन्द्र प्रथम प्रधान मंत्री । कुछ समय पश्चात् मण्डल ने 'ब्रज भारती' नाम की एक पत्रिका का प्रकाशन भी प्रारम्भ किया। तब से अब तक १२ वर्ष पर्यन्त यह मण्डल लोक-साहित्य का संकलन, अनुशीलन और संवर्द्धन का कार्य चलाता जा रहा है। इस मण्डल के प्रारम्भिक विधान में तो यह शर्त रखी गई थी कि सदस्य शुल्क के स्थान पर ग्राम गीत, ग्राम कहानियाँ कहावतें अथवा शब्द अधिक पसन्द किये , जायेंगे। मण्डल की ओर से ब्रज लोक संस्कृति तथा लोक कथाओं पर दो पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी । यही नहीं लोक गीतों और अन्य तत्सम्बन्धी सामग्री का मण्डल के पास अच्छा भण्डार है। मंडल के कार्यकर्ताओं ने ब्रज के सर्वांगीण जनपदीय जीवन में सहयोग देने का प्रयत्न किया। वहाँ के वनों की रक्षा स्थानीय कार्यकर्ताओं को प्रोत्साहन, स्थानीय विभूतियों का सम्मान, रासरसिया आदि प्राचीन लोकनृत्यों का संवर्धन उसके द्वारा होता रहा है। जनपदीय कार्य करने वाली जितनी संस्थाएँ है उन सबमें सबसे अधिक नियमबद्ध कार्य इस संगठन के द्वारा हुआ।[10] इस तरह जनपद आंदोलन की शुरुआत हुई और 1940 में टीकमगढ़ से 'मधुकर' पत्रिका का संपादन शुरू हुआ। आगे इसी कड़ी में 'जनपद' जैसी पत्रिकाओं का संपादन शुरू हुआ जिसके संपादक स्वयं डॉ अग्रवाल थे। इसी क्रम में अवध,ब्रज,भोजपुरी व अन्य जनपदीय बोलियों की प्रतिनिधि संस्थाएँ बनीं जिन संस्थाओं ने अपनी बोलियों का भाषा कोष बनवाया और हिन्दी कि ज्ञानकोश को समृद्ध किया।

डॉ अग्रवाल ने इस आंदोलन को गंभीरता से लिया था। उन्होंने भूमि,जन और संस्कृति की आपसी ऊर्जस्विता को एक दूरदर्शिता के आईने में लेते हुए इस आंदोलन की पृष्ठभूमि बनाई थी। उन्होंने 'जनपदीय अध्ययन की आँख' नाम का एक सुस्पष्ट और तर्कशील लेख लिखा और यह बताने की कोशिश की कि यह योजना जनपदों की आत्मप्रतिष्ठा को जिलाने के लिए है न कि किसी योजनागत राजनीति से। वे इस कार्यक्रम की रूप रेखा सुनिश्चित करते हुए लिखते हैं कि जनपदों की परिभाषा लेकर गाँव के जीवन का वर्णन हमारे अध्ययन की बहुत बड़ी आवश्यकता है और इस काम को प्रत्येक कार्यकर्ता तुरंत हाथ में ले सकता है। जनपदीय अध्ययन को विकसित करने के तीन मुख्य द्वार हैं :

पहला - भूमि और भूमि से संबंधित वस्तुओं का अध्ययन ।

दूसरा - भूमि पर बसने वाले जन का अध्ययन ।

तीसरा- जन की संस्कृति या जीवन का अध्ययन।

भूमि, जन और संस्कृति रूपी त्रिकोण के भीतर सारा जीवन समाया हुआ है। इस वर्गीकरण का आश्रय लेकर हम अपने अध्ययन की पगडंडियों को बिना पारस्परिक संकर के निर्दिष्ट स्थान तक ले जा सकते हैं।[11] उन्होंने इस आंदोलन की भूमिका स्पष्ट करते हुए इस आंदोलन की आंतरिक संरचना दिखा दी थी।

आंदोलन के समय कई बार कुछ वाद विवाद संवाद के अवसर बने जब चंद्रबली पाण्डेय जैसे कई विद्वान इसके विरोध में आये।बनारसी दास चतुर्वेदी ने मधुकर में एक लेख लिखते हुए जनपदीय आंदोलन को प्रांतीय विकेंद्रीकरण से जोड़

दिया। पत्र संवादों में इस बात की खूब चर्चा रही कि चंद्रबली पाण्डेय ने चतुर्वेदी जी पर आरोप लगाया है कि वे हिंदी जनता को उलझा रहे हैं। लेकिन डॉ अग्रवाल ने आंदोलन को किसी भी तरह के राजनैतिक पहलुओं की ओर जाने से रोका। उन्होंने इसके सांस्कृतिक पक्ष को ही ध्यान में रखा।

डॉ जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी ने लिखा है कि हिंदी साहित्य सम्मेलन ने जिला के स्थान पर जनपद लिखना शुरू किया था।[12] और शायद यह उसी मुहिम का प्रभाव है कि आज प्रशासनिक शब्दावली में जनपद शब्द अस्तित्व में है।

जनपदीय अध्ययन और वासुदेव शरण अग्रवाल की साहित्येतिहास दृष्टि :

इतिहास के भिन्न भिन्न स्रोत होते हैं। सामान्य तौर पर इतिहास अध्ययन की बहसों पर एक दृष्टि डालते हैं तो किसी राष्ट्र के मुकम्मल इतिहास के लिए तत्कालीन समयानुकूल अभिलेख,सिक्के,मूर्तियाँ, चित्रकला, वास्तुकलाओं एवं अन्य स्रोतों पर विशेष बल दिया जाता है। वासुदेव शरण अग्रवाल ने इतिहास लेखन की परंपरा में साहित्यिक श्रोतों को अत्याधिक महत्व दिया। उन्होंने लोकभाषाओं यानी कि जनपदों में बंटी हुई सांस्कृतिक इकाइयों को अध्ययन स्रोतों के रूप में देखा परखा और पाणिनि कालीन भारतवर्ष जैसे अनुपम ग्रंथों की आधार शिला रखी। समाजविज्ञानी रमाशंकर सिंह ने उनकी इस इतिहास दृष्टि पर प्रकाश डालते हुए कहा है कि डॉ० अग्रवाल ने अपने लेखन के द्वारा बताया कि एक देश के रूप में भारत की बहुभाषी-बहुधार्मिक जनता अपने को किस रूप में और किस प्रकार से प्रस्तुत करती रही है। वासुदेव शरण अग्रवाल की समस्त रचनाओं को यदि आप पढ़ें तो पाएंगे कि उसमें शुरू से लेकर अंत तक एक भारत बसता है जो जितना शास्त्र में है, उतना ही लोक में।एक की कीमत पर उन्होंने दूसरे को ओझल न होने दिया है।[13] डॉ अग्रवाल के साहित्य अध्ययन विशेष की यात्रा के महत्वपूर्ण पड़ावों में संस्कृति,कला एवं भाषा चेतना जैसी बिंदु आते हैं। साहित्य के अंतस्थल में बिखरी हुई शब्द परंपरा उनकी साहित्येतिहास दृष्टि का केंद्रबिंदु है। पद्मावत जैसे ग्रंथों में उन्होंने शब्दमोतियों को छानकर राजस्थान और अवध की सांस्कृतिक विरासत को नवीनतम बना दिया है। डॉ नरेश कुमार पद्मावत पर किए गये उनके महत्वपूर्ण कार्य पर टिप्पणी देते हैं कि ,"इस ग्रन्थ में दी गई उनकी टिप्पणियां स्वयं में एक विशाल सांस्कृतिक इतिहास की निधियों को संजोए हुए हैं। कला, संस्कृति और शब्द के स्वरूप को जितनी गहनता के साथ डॉ० अग्रवाल ने प्रस्तुत किया है, वैसा 'पदमावत' का अध्ययन करने वाला अन्य कोई टीकाकार नहीं कर सका । मध्यकालीन इतिहास का आधार बताने के लिए लेखक को सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक ज्ञान अपेक्षित है । मध्ययुगीन भारतीय साहित्य के ज्ञान के आधार पर तथा जायसी के समकालीन साहित्य की भाषा और संस्कृति के सन्दर्भ में डॉ० अग्रवाल द्वारा प्रस्तुत व्याख्या उनकी मौलिक सूझ का प्रमाण है। डॉ० अग्रवाल जहाँ देश के प्राचीन इतिहास एवं पुरातत्त्व की गहराइयों में सदैव निमग्न रहते थे, वहाँ उनका हृदय काव्य-रस से भी सदा सिक्त रहता था । कहना न होगा कि शब्दों के ऐतिहासिक विकास और उनके प्रयोग को दिखाने की दृष्टि से इतिहास और संस्कृति डॉ० अग्रवाल की संजीवनी व्याख्या में सर्वप्रथम स्पष्ट रूप से प्रकट हो सके हैं, जो निश्चय ही हिन्दी साहित्य की चिरस्मरणीय उपलब्धि है।" [14] डॉ अग्रवाल ने पद्मावत के मूल भाष्य के अंतर्गत लगभग हर पृष्ठ पर प्रत्येक शब्द की अर्थपरम्परा पर छोटी छोटी टिप्पणियाँ लिखी हैं। इससे यह जाहिर होता है कि जनपदीय बोलियों में उनकी कितनी गहरी आस्था थी जिसने उन्हें साहित्य अध्ययन की ओर उन्मुख किया।

पद्मावत का पाठ संपादन उनके रचनाकर्म का एक विशेष पहलू रहा है। कई महत्वपूर्ण प्रतियों के सहयोग से उन्होंने पद्मावत का मूल भाष्य लिखा। इसके पहले डॉ माताप्रसाद गुप्त लगभग सोलह प्रतियों के आधार पर जायसी ग्रंथावली का पाठ संपादन कर चुके थे। नरेश कुमार ने लिखते हैं कि डॉ० अग्रवाल ने मनेर शरीफ की प्रति और बिहार शरीफ खानका पुस्तकालय की प्रति (फारसी लिपि) के आधार पर पाठ-शोधन कर जायसी के मूल पाठ तक पहुँचने का सराहनीय प्रयत्न किया है और कुछ स्थानों पर डॉ० माताप्रसाद- गुप्त के पाठ से भिन्न मूल पाठ स्वीकार किया है। इसके

साथ ही डॉ नरेश कुमार ने 1956 की आलोचना में प्रकाशित कमलकान्त पाठक की टिप्पणी से यह बात सिद्ध करने का प्रयास भी किया है कि डॉ ० अग्रवाल जी ने डॉ० माताप्रसाद गुप्त के जायसी विषयक कार्य परंपरा को और भी समृद्ध बना दिया है।[15]

डॉ० अग्रवाल ने हिंदी साहित्य की नवीन अंकुरों के विकास के लिए बोलियों की उपादेयता को प्रस्तावित किया था। जनपदीय बोलियों को लेकर उन्होंने कहा भी है कि राष्ट्र जनपदों के समूह से बना है इसलिए जनपद की अवहेलना करके राष्ट्रीय कोश में भरने के लिए हम उपहार सामग्री लाएंगे कहाँ से ?[16] डॉ अग्रवाल ने भाषा और इतिहास के इन सभी पक्षों को साहित्य का समग्र रूप कहा था। उन्हें पता था कि हिंदी का नया साहित्य बोलियों से ही समृद्ध हो सकता है। उन्होंने अपने निबंध 'हिंदी साहित्य का समग्र रूप' में कहा था कि हिंदी में जो नवीन साहित्य-सृष्टि होगी उसका माध्यम भी खड़ी बोली ही होगी । प्रान्तीय भाषाओं के बढ़ते हुए साहित्य का हिंदी भाषा में अनुवाद करने का कार्य भी खड़ी बोली के साहित्यसेवियों को करना होगा । संसार की अन्य भाषाओं में जो उच्चकोटि का साहित्य या काव्य अब तक बने हैं या आगे बनेंगे।उन्हें भी हिन्दी भाषा में लाने का कार्य शेष है। ये सब कार्य खड़ी बोली के माध्यम से पूरे करने होंगे। इन्हें हम उस कोटि मे रखते हैं जो एक केन्द्र से किये जा सकते हैं। इन कार्यों के करने में न बहुत-से केन्द्रो में बहकने की आवश्यकता है और न जनपदों की पगडडियों में रास्ता भूल जाने की। यहाँ हमारे मित्र सब प्रकार की आवश्यकता से एकदम सुरक्षित रहकर हिन्दी के गौरव की वृद्धि कर सकते हैं।[17]

निष्कर्ष :

जनपदीय अध्ययन और आंदोलन की पृष्ठभूमि औपनिवेशिक भारत में निर्मित हुई। जनतांत्रिक और सांस्कृतिक मूल्यों की स्थापना के लिए यह एक आवश्यक पहल थी जिसने देश की जन बोलियों और जन अभिव्यक्तियों की ओर भारतीय बुद्धिजीवियों का ध्यान आकर्षित किया। डॉ अग्रवाल जैसे विद्वानों ने इस अध्ययन दृष्टि को अपनी इतिहास दृष्टि में सम्मिलित करते हुए यह सिद्ध किया कि भारतीय इतिहास को जानने के लिए यहाँ की निरक्षर जनता का साहित्य पढ़ना होगा तभी हम उस युग विशेष का इतिहास समझ सकते हैं। उन्होंने पाणिनि के ग्रंथों का अध्ययन करते हुए कई आयामों में पाणिनि के समय का भारत खोज निकाला। जनपदीय अध्ययन की पहल से हर प्रान्तीय बोलियों में अलग अलग लोग सक्रिय हुए और उन्होंने अपनी अपनी बोलियों के साहित्य कोश को समृद्ध किया। उन्होंने जनपदीय साहित्य के अध्ययन से यह स्थापना दी कि लोक साहित्य के प्रताप से देश की भिन्न भिन्न सांस्कृतिक इकाइयाँ आपस में घुल मिल गयी हैं। उन्होंने इसे 'मौलिक एकता' का नाम दिया। उन्होंने अलग अलग इकाइयों का गोमुख संस्कृत को माना है शायद यही कारण है कि एक भाषा के अलग अलग अपभ्रंशों से निकली हुई प्रादेशिक बोलियाँ एक दूसरे से इतना जुड़ाव रखती हैं।

संदर्भ ग्रंथ :

1. चतुर्वेदी, रामस्वरूप, हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास, 2019,पृष्ठ संख्या 10
2. उपाध्याय, राम नारायण,जनपदीय अध्ययन का उद्देश्य मनुष्य को पहचानना, सदानंद शाही (सम्पा०), जनपदीय अध्ययन की भूमिका,भोजपुरी अध्ययन केंद्र, 2017, पृष्ठ संख्या 97)
3. कुमार,नरेश,वासुदेव शरण अग्रवाल : व्यक्तित्व और कृतित्व, 1985, इंडो विजन प्राइवेट लिमिटेड,पृष्ठ संख्या 254)
4. प्रधान,अवधेश, वासुदेव शरण अग्रवाल की साहित्य दृष्टि, मारुति नंदन प्रसाद तिवारी (संपा०), सात्वतार्चन, 2007,पृष्ठ सं 185)

5. अग्रवाल,वासुदेव शरण,पृथिवीपुत्र,1948, सस्ता साहित्य मण्डल, पृष्ठ संख्या 3
6. अग्रवाल, वासुदेव शरण, जनपदीय अध्ययन की आँख, कपिला वात्सायन (सम्पा०), वा० श० अग्रवाल संचयिता,साहित्य अकादमी,2012,पृष्ठ 447
7. अग्रवाल,वासुदेव शरण,पृथिवीपुत्र,1948, सस्ता साहित्य मण्डल, पृष्ठ संख्या 172
8. वही, पृष्ठ संख्या 174
9. चतुर्वेदी,जगदीश प्रसाद, जनपदीय आंदोलन, सदानंद शाही (सम्पा०),जनपदीय अध्ययन की भूमिका,भोजपुरी अध्ययन केंद्र,2017पृष्ठ संख्या 107
10. वही, पृष्ठ संख्या 109
11. अग्रवाल, वासुदेव शरण, जनपदीय अध्ययन की आँख, कपिला वात्सायन (सम्पा०), वा० श० अग्रवाल संचयिता,साहित्य अकादमी,2012, पृष्ठ संख्या 449)
12. चतुर्वेदी,जगदीश प्रसाद, जनपदीय आंदोलन, सदानंद शाही (सम्पा०),जनपदीय अध्ययन की भूमिका,भोजपुरी अध्ययन केंद्र,2017, पृष्ठ संख्या 126)
13. सिंह,रमाशंकर, वासुदेव शरण अग्रवाल : साहित्य,कला और समाज, Samalochan.com, जुलाई 2022
14. कुमार,नरेश,वासुदेव शरण अग्रवाल : व्यक्तित्व और कृतित्व, 1985, इंडो विजन प्राइवेट लिमिटेड,पृष्ठ संख्या 88
15. वही, पृष्ठ संख्या 128
16. अग्रवाल,वासुदेव शरण,पृथिवीपुत्र,1948, सस्ता साहित्य मण्डल, पृष्ठ संख्या 98
17. वही, पृष्ठ संख्या 100